अभिमन्यु की आत

क्रम :

आदरणीय भाई श्री भगवतीप्रसाद खेतान को

"तुम गा दो मेरा गान..."

"आपने इन्हें परखा, मेरी मेहनत को देखा—बस, आपकी यह हमदर्द मुस्कुराहट ही इनकी क़ीमत थी और मुझे मिल गई......और पारखी की यह हमदर्द मुस्कुराहट मुझे मिलती रहे, मैं फिर ग़लाज़त और गंदगी में लिपटूंगा ; फिर ख़ौफ़नाक-गारों और घाटियों में उतरूंगा और फिर भयानक अज़दहों और अजगरों के माथों से क़ीमती मणियाँ और हीरे चुन-चुनकर लाऊंगा !"

राजेन्द्र यादव
दिल्ली, ३-२-५९

ऐक्टर और अन्य आँसें

ऐक्टर और अदृश्य आँख

साफ़ कहूँ तो मुझे इन ऐक्टरोंके प्रति कभी श्रद्धा नहीं रही। जाने क्यों, मैं इन्हें नम्बर एक का झूठा, मक्कार, आवारा और लफंगा समझता रहा हूँ। हँसी आती है जब ये लोग रैकमें उल्टी-सीधी किताबें लगाकर पोज़ देते हैं....

लेकिन भुवनेश अभिनेता ही नहीं, नेता भी था। इसलिये इन-लोगों के प्रति विशेष आदर का भाव न रखते हुए भी मुझे इस व्यक्ति में थोड़ी दिलचस्पी होनी स्वाभाविक थी। यों बहुत से अभिनेता आये, गये।

वह बड़ी धूमधाम से अपनी नाट्यमंडली के साथ हमारे नगर में आया था और शहर शहर में अपने नाटकों की सफलता का डंका बज-वाता हुआ वह देश-भर का दौरा कर रहा था। उसके कुछ नाटकों की तो अख़बारों और बड़े लोगों ने बेहद तारीफ़ की थी। राष्ट्र-निर्माण में उनका बड़ा महत्त्व माना गया था। दरअसल इसी कारण मेरे मनमें उसके नाटक देखने की भी उत्सुकता थी। जहाँ तक उसके अभिनेता होने का सवाल है मैं उसकी इज़्ज़त न करता होऊँ यह बात नहीं थी। घृणा थी मुझे उसके नेतापन से। वह अपने सिनेमाई जीवन की सफलता के सबसे अच्छे दिनों में रङ्गमंच को उठाने का बीड़ा लेकर इस ओर मुड़ पड़ा था और चूंकि अपने समय के सबसे प्रसिद्ध

सिनेमाओं में वह हीरो का अभिनय कर चुका था इसलिये उसके इस क़दम ने उसे सचमुच का हीरो बना दिया था। जहाँ वह जाता हज़ारों लोग उसके आस-पास जमा हो जाते। भीड़ सँभालना मुश्किल हो जाता। बड़ी-बड़ी संस्थाएँ उसे मान-पत्र देतीं और स्कूलों-कॉलेजों में उसके भाषण होते। हमलोग अक्सर व्यंग से हँसकर कहते कि वह अपने सिनेमा के हीरो होने का यश वसूल कर रहा है।

ख़ैर, शहर में उसके नाटकों की बड़ी चर्चा थी और उससे ज़्यादा शोर था उसके भाषणों, स्वागतों, और अभिनन्दनों का। सांस्कृतिक जीवन में एक 'मसीहा' आ गया था।

कुछ दोस्तों के साथ मुझे भी उसका एक खेल देखने जाना पड़ा। रजत-पट पर मैं उसके भव्य-व्यक्तित्व का प्रशंसक रहा हूँ। और कुछ नहीं बोलूंगा, नाटक में उसके अभिनय ने मुझे विभोर कर दिया। लगा, नाटक ही उसका असली क्षेत्र है। अच्छा किया जो इधर आगया। रह-रह कर मेरे रोमांच सजग हो आते थे और दिल से गहरी साँस निकल आती···हाय, इस वक्त मेरे फ़लाने परिचित न हुए, देखकर मुग्ध जाते···अजब जादू था कि मैं तीन घण्टे कुर्सी से बँधा बैठा रहा···कैसी स्वाभाविकता से दृश्य बदलते थे, लोग आते और जाते थे···जैसे सब कुछ अपने-आप होता चला जा रहा हो—अभिनेता कैसी आश्वस्त-निश्चिन्तता से बोलते और सारे कार्य करते थे···स्वभावतः ही भुवनेश का अभिनय सारे नाटक पर छाया रहा। वह मेरे लिये नया अनुभव था··· लेकिन वह सारा अनुभव नष्ट हो गया, अन्तिम अंक का अन्तिम दृश्य शुरू होने से पहले गले में सफ़ेद मलमल का तह किया हुआ दुपट्टा डाले बड़े कलात्मक ढङ्ग से मंचपर हाथ जोड़कर भुवनेश आ खड़ा हुआ। अपनी मजबूरियों और तुच्छ प्रयत्नों का ज़िक्र कर उसने सूचना दी कि आज की झोली प्रसिद्ध वयोवृद्ध कवि क—को जायेगी। झोली का र्थ था कि अभिनेता और अभिनेत्री झोली फैलाकर अन्त में दरवाज़े खड़े हो जाते थे और निकलने वाले विगलित भक्ति से अपने सम-

केन्द्र भुवनेश के खूबसूरत चेहरे के दर्शनों से अपने को निहाल करते और श्रद्धानुसार झोली में कुछ डालते···इस झोली की भी शहर में बड़ी धूम थी। किसी दिन झोली किसी सार्वजनिक शिक्षा-संस्था को जाती तो किसी दिन प्राइम-मिनिस्टर-फंड को। लोग भुवनेश के त्याग और जन-सेवा की प्रशंसा करते नहीं थकते थे ..

मैं जब पास से निकला तो झोली में पड़े मुड़े-तुड़े नये-पुराने नोटों, और सिक्कों को देखते हुए दोस्त से ज़ोर से बोला: "नेता बनने का अच्छा स्टंट है!"

मैं समझता था कि सुनकर वह सकपकायेगा या झुँझलायेगा, लेकिन वह बड़े बुज़ुर्गाना ढंग से मुस्कुराया। मुस्कुराहट बोली: 'बच्चे हो....!'

और जैसे ही मुझे याद आया कि भुवनेश मँजा हुआ ऐक्टर है, मैं आगे जाकर ठिठक गया। ऊपर वाले ओठ और नाक के नीचे की आड़ी नाली पर फैलनेवाली उसकी मुस्कुराहट ने जैसे मेरे भीतर सोये किसी को कोंच दिया। मन में आया, आखिर देखूँ तो सही कितना गहरा ऐक्टर है।

झोली के बाद उसे एपॉइण्टमेण्ट्स और हस्ताक्षर लेनेवालों ने घेर लिया था। अधिकांश सिनेमा मजनूँ-स्टूडेण्ट्स थे, और उनका खयाल था कि अगर वे किसी तरह भुवनेश को प्रभावित कर लेंगे तो निश्चय ही किसी सिनेमा के लिये उनके केस की सिफारिश हो जायगी। अगर उसके नाटक में घुसने का अवसर मिल गया तब भी कोई बात नहीं; वे किसी फिल्म के हीरो बने-बनाये रक्खे हैं। ऐसे दो-एक उदाहरण सामने भी थे। खैर, बड़ी मुश्किल से मैं उसके सामने पहुँचा। मुझे भी वे बाकी लोगों में न समझ लें इसलिये गम्भीर स्वर में बोला—"डैडी, (सभी लोग उन्हें इसी नाम से पुकारते थे) आपसे इण्टरव्यू लेना है।" डैडी के मुँह पर शालीन मुस्कुराहट आगई। मानो यों

तो यह उसके लिये कोई नई बात नहीं है लेकिन उसे इतना मह
समझना ज़्यादती है। उसने कुछ कहने के लिये एकदम मुँह खोल
फिर जाने क्या सोचकर मुझे देखा—ठोढ़ी पर उँगली लगाई, पुत
चढ़ाकर माथे पर बल डाला और तीन-चार एपॉइन्टमेन्टों के नाम लि
"कल तो लड़कियों के स्कूल में भाषण देना है; दोपहरको जस्टिस
के साथ लंच है, सन्ध्या को नाटक-क्लब की मीटिंग को 'प्रिसाइड' कर
है परसों साहित्यिक-संस्था 'त्रिशुक' में प्रधान अतिथि के रूप में बु
गया है..." फिर मजबूरी से हँसा : "ऐसा समय बाँध दिया है...
है और क्या कहूँ ? अच्छा, परसों रखिये, सुबह आठ बजे के आस
पास—त्रिशुक में तो नौ बजे जाना होगा...."

"परसों सुबह आठ बजे।" मैंने आश्वत होने के लिये दुहरा
अर्थात् एक घंटा...मैं मन ही मन हँसता हुआ लौट आया...साधार
बोलचाल में भी ऐक्टिंग करता है : चाहे दिनभर पड़ा-पड़ा सिगरे
फूँकता और शराब पीता रहे लेकिन यह जताता है कि देखो मैं कित
व्यस्त हूँ। मगर फिर ऐक्टर को स्टेज से अलग देखने के मोह
मुझे आछन्न कर लिया।

सुबह आठ बजे वही फ़िल्मी हीरो बन जाने के सपनों से आक्रा
भक्तों की भीड़ से घिरा भुवनेश लॉबी में फ़र्श पर दीवार के सहारे
था। लिनिन का पीले रंग का ढीला-ढाला कुर्ता और वही मुस्कुर
मुद्रा...आकर्षक और जादूभरी...। वह गाव-तकिये पर कुहनी
बड़े नाटकीय अन्दाज़ से कुछ बता रहा था। बीच-बीच में बात तोड़
आँखों में ऐसे खोये-खोयेपन का भाव ले आता था कि सिगरेट
लियों में अनाथ-सी सुलगती रहती। श्रोता उसकी हर मुद्रा
आँखों से निगल रहे थे और हर शब्द को वेद-वाक्य की तरह व
की अँगुलियाँ फैलाए पी रहे थे...मैं समझ गया, महंत की ऐ
हो रही है...

देखते ही वह मुस्कुराया...एकदम नम्रता से उठ आया : "आइये....
इये !" भीड़ में लड़कों ने रास्ता छोड़ दिया और मैं जैसे अपने
प उसके पास तक पहुँच गया। उसने आधा झुके हुए ही अपने
शाल हाथों मे मेरे हाथ ले लिये और पास में सटाकर बैठा लिया।
झसे दुगुनी उम्र और इतनी प्रसिद्धि का आदमी यों मेरे प्रति नम्रता
र्शित करे, यह सचमुच मुझे बड़ा कृत्रिम लगा। फिर ध्यान आया,
ह नम्रता मेरे लिये नहीं बल्कि इन दर्शकों को प्रभावित करने के लिये
। मैं मुस्कुरा उठा।

"बस एक मिनट की फ़ुर्सत..." उसने माफ़ी के लहज़े में कहा।
"जी हाँ, आप अपनी बात जारी रखिये"। लड़कों की ईर्ष्या और
शंसा-भरी निगाहें मुझे अपने शरीर पर चुभती महसूस हो रही थीं।
मेरे सौभाग्य को सराह रहे थे कि इतनी बड़ी इज्ज़त बख्शी गई है।
उनकी निगाहों में काफी ऊँचा आदमी था।

"मैं इनको समझा रहा था कि बेटे, घर जाओ और पढ़ो-लिखो।
म जैसे हज़ारों भोले-भाले लोग रोज़ बम्बई आते हैं और वहाँ बोझा
ोते हैं। ऐक्टिंग इतनी आसान नहीं है जितनी दिखाई देती है। इसके
लये बड़ी लगन और साधना चाहिये। आप लोग विश्वास करेंगे ?
ने तो अपने बेटे को भी लात मार कर घर से बाहर निकाल दिया था...
ो कुछ भी बनो, अपने बल पर बनना, बाप के बूते पर इस लाइन में
त आना। आप में से कोई कर सकेगा इतनी सख्ती ? बरसों मैंने
िल्मी-कम्पनियों में पर्दा खींचने का काम किया है...!" वह फिर
तीत में खो गया "अजब थे वे दिन भी....दिन भर में चार आने का
ाना खाते थे...एक आने की दाल और तीन आने की रोटी। बड़ा
ी गन्दा-सा होटल था। मक्खियाँ भिन-भिनाया करती थीं। एक
ाथ से मक्खियाँ उड़ाते जाते थे और दूसरे हाथ से खाते थे...आज भी
स शहर में जाता हूँ तो वहाँ जाकर खाना ज़रूर खाता हूँ। आज वो

दिन नहीं रहे...याद रह गई है...आज भी मन भीग जाता है...
बहुत बुड्ढा हो गया है होटलवाला। बेचारा बड़ी खातिर करता है। मैं
कहता हूं "दादू, चलो मेरे साथ चलो। मेरे पिता हो। तुम्हें
किसी दोस्त से कहकर शानदार होटल खुलवा दूँगा।" भुवनेश का
गला भर्रा आया और आंखों में आँसू आ गये। उन्हें निगल कर
बोला—"दोस्त से ही तो कहना होगा। आप जानते ही हैं, मेरे पास तो
अपना कुछ है नहीं। मैं तो भाई, फ़क़ीर आदमी हूँ। एक जुनून है
कि ऐक्टिंग और रङ्ग-मंच जैसी सांस्कृतिक चीज़ों को लोग आखिर
इतनी हिक़ारत से क्यों देखें? और आज जितना कुछ ला चुका हूँ सब
आप ही लोगों का आशीर्वाद है। मैं अकेला ही तो नहीं हूँ, सभी
लोग हैं। मेरे साथ भूखे रहे हैं, ज़लालत और ज़हमत की ज़िन्दगी
बिताई है बेचारों ने। इसलिये आप मेरे यहाँ किसी को नौकर नहीं
पाएँगे। ज़रूरत होती है तो मैं खुद सेंट खड़े कराता हूँ। सब इस
नाटक कम्पनी के मालिक हैं। पिछले दिनों चीन जाना हुआ, वहाँ
की सरकार अपने कलाकारों के लिए कितना कुछ कर रही है। रूस
की बात का तो कहना ही क्या है। यहाँ हमें ज़रूरत के वक्त रेल का
डिब्बा नहीं मिलता। खैर, फिर भी मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं
है....सरकार के पास और भी तो बहुत-से फ़ौरी ज़रूरत के काम हैं
पंचवर्षीय योजना के निर्माण के काम हैं।...मेरा खर्चा कुछ ज्यादा है
ये काम करनेवाले भी तो मेरे बच्चे हैं। इन्हें भी तो भूखा नहीं रख
सकता। इनके लिये कभी-कभी सिनेमा जाना होता है, कभी सिनेमा
बनाना होता है। और सब लाकर इन नाटकों में झोंकता हूँ। लड़
कहते हैं—डेडी का दिमाग खराब है। अब है भाई, और क्या कहूँ
कुछ लोग प्यार में आकर इसे मिशन का नाम दे देते हैं।" फिर द
सकर बोला—"ज़िन्दगी में रिहर्सल, ऐक्टिंग, डायरेक्शन के नाम
पाँव कूटने पड़े हैं कि आज मेरे पाँव सूज गये हैं। खून
...न ठीक रखने के लिए जिस दिन आध-घण्टा शीर्षासन न क

उस दिन काम नहीं कर सकता।" उन्होंने पाजामा चढ़ाकर अपनी सूखी-सूखी पिंडलियाँ दिखाईं।

भुवनेश जो कहता था, उसे पूरी नाटकीय मुद्राओं के साथ कहता था। दर्शकों के चेहरों पर कभी करुणा ले आता, कभी हँसी। इस सारे शब्दाडम्बर के पीछे छिपी भावना को मैं जानता था। ऐक्टर को प्रभावशाली भाषणकर्ता होना ही चाहिए, यह उसका पेशा है। जब उसे नेता का रोल अदा करना है तो नेताओं की भाषा बोलनी चाहिये। मैंने जहाँ भुवनेश के अभिनय की प्रशंसा की वहीं लोगों की बेवकूफी पर तरस भी आता रहा कि ये लोग इतनी-सी बात नहीं समझ पारहे।

तभी सहसा एक ऐसी बात हो गई कि दर्शकों की श्रद्धा भुवनेश पर चौगुनी बढ़ गई, लेकिन मेरा मन विरक्ति से भर उठा।

धारीदार पाजामा और मैली-सी कमीज पहने बिखरे बालोंवाला एक पंजाबी आदमी लोगों के रोकते-रोकते भी भीड़ चीरकर सीधा डैडी के पास तक आ पहुँचा। पीछे-पीछे और भी दो आदमी लपके आये। शायद इनसे ही छूटकर वह यहाँ तक आया था। मुझे इन पीछेवाले लोगों को पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई। इनमें से कल एक मदारी बना था। वह पंजाबी भुवनेश के कदमों पर गिरने को ही था कि उसने उसे कन्धों से थाम लिया—"बिरादर, बोल तो कुछ मुँह से। ऐसा पागल क्यों हो रहा है? क्या करूँ तेरे लिए?"

हिचकियों में रोने के बीच नाक सुड़कते हुए बिना ऊपर देखे वह बोला—"मुझे बचा लो मेरे मालिक, मैं अपना सब कुछ पंजाब में खो आया हूँ। जवान बहन है, बेटा है। चार दिन से मुँह में अन्न का दाना नहीं गया है...।"

"बस!" भुवनेश बोला—"ले, ये भी कोई रोने की बात है यार! पंजाबी आदमी है, उठ, और सीना तान के खड़ा हो...भीख क्यों माँगता है, अपना हक माँग। ले, कुछ कर ले। खबरदार, भीख

मत माँगना।" और भुवनेश ने इशारा किया तो पास बैठे एक साहब ने नोटों की एक गड्डी उस आदमी को दे दी। भुवनेश बोला—"ले जा, ग़रीब आदमी हूँ। इस वक्त पचास रुपये से ज्यादा नहीं दे सकता। जा, कोई छोटी-मोटी दुकान लगा लेना!"

फिर यह जैसे कोई अत्यन्त ही तुच्छ बात हो इस तरह दर्शकों की ओर मुख़ातिब हो गया था। पंजाबी को जो अभी-अभी अपना सीना तानकर बताया था सो अभी तक यों ही तना था। सांस खींची और भुजाएं फुलाकर बोला—"मेरी उमर हो गई है। आप जवान आदमी हैं। मगर आज भी ललकारता हूँ, आप में से है किसी का इतना सीना? पंजा लड़ाओगे जवान? लो, ये देखो मेरी भुजाओं के मसिल्स। यों नहीं, दबाकर देखो।" और कई वनस्पतिया जवान लिलीपुटियनों की तरह दोनों हाथों से बाहों के मसिल्स दबा-दबाकर देखने लगे; क्योंकि एक पंजे की पकड़ में उसकी बाँह को लेना सचमुच संभव नहीं था। एक हाथ से वह उस पंजाबी को अपने चरण छूने से रोकता रहा।

नाटक! नाटक! नाटक! यह आदमी इस वक्त भी नाटक करने से बाज़ नहीं आ रहा। लोगों की आँखों में कैसी आसानी से यह धूल झोंके चला जा सकता है। क्या इतना भी मैं नहीं समझ सकता कि मुझे और दर्शकों को प्रभावित करने का लटका है और यह पंजाबी इनके दल का ही कोई आदमी है। वह गद्गद कृतज्ञ-भाव से नोट लेकर अब तक जा चुका था! नोटों की गड्डी भी पहले से कैसी तैयार बंधी रखी थी। नीलाम के अखाड़ों में भी तो लोग इसी तरह मिले रहते हैं। सब कुछ कैसा पूर्व-नियोजित-सा होता चला जा रहा है।

उसके चले जाने के बाद भुवनेश ने उँगलियों से दोनों कोर के पोंछकर कहा—"जाने किस की जरूरत कितनी बड़ी हो...दिन में 1 से एक भलाई का काम हो जाय तो सारे गुनाह माफ़ हैं।"

पता नहीं फिर उसने मेरी आँखों में क्या देखा कि सिगरेट ऐश-ट्रे में ठूँसकर एक नाटकीय झटके से उठ खड़ा हुआ—"अच्छा, अब चलूँगा।" एक बार नम्रता से ठीक स्टेज के पोज़ में हाथ जोड़े और भीतर के कमरे की ओर मुड़ पड़ा—'आइये भाई, चलें।" मुझे लगा इस ढोंगी आदमी के पास मैं आया ही क्यों?

"डैडी, आज हमलोग शहर घूमने जायेंगे।" जैसे ही भुवनेश ने कमरे में प्रवेश किया कि कहीं से रंग-बिरंगे कपड़ों में तीन-चार नवयुवतियों ने आकर उसके चरण छुए। भुवनेश ने स्नेह से उनके खुले बालों-वाले सिर पर हाथ फेरा। वे शायद नहा-धोकर सीधी ही आ रही थीं। वह बोला—"तो क्या आज नाश्ता नहीं होगा साथ?"

"वहीं कहीं कर लेंगे हम लोग। आप कर लें।" जिस लड़की के सिर पर हाथ रखकर वह बोल रहा था, उसने उससे सटे हुए ही लाड़ में आकर कहा—"ममी को भी ले जायें, डैडी!" मैंने देखा, यही लड़की तो नाटक में परसों भुवनेश की पत्नी बनी थी। यह तो मुश्किल से बाईस की होगी। उसमें तो तीस-पैंतीस की लग रही थी। मेकअप होगा। लड़कियाँ सभी काफी खूबसूरत थीं और उनके अंग उस नकली शील के बन्धन में भी थिरक उठते थे।

"अच्छा ले जाओ। क्या करें, अकेले ही करेंगे नाश्ता। और देखो, इन्हें प्रणाम करो। ये बहुत बड़े आदमी हैं।" नाटकीय अन्दाज़ में मेरी ओर इशारा करके वह बोला। जब सभी लड़कियों ने कठपुतलियों की तरह प्रणाम किया तो मैं झेंपकर लाल हो उठा। झुँझलाहट इसलिए थी कि अपने यहाँ के दिखावे के लिये वह ज़बर्दस्ती मुझे महान बनाये दे रहा था। भुवनेश सबका नाम बता रहा था—"यह रशीदा है, यह उम्मी है, यह मीरा है...सभी मेरी बेटियाँ हैं। विद्यार्थी मेरी खातिर घर छोड़-छाड़कर यहाँ भटक रही हैं। घरवालों का विश्वास है, यहाँ तक भेज दिया। ग़लत करती हैं तो बुरी तरह डाँट भी देता हूँ, लेकिन सारे शो की जान भी ये ही हैं।"

उसी समय कमरे में एक प्रौढ़ा ने प्रवेश किया। वह बंगाली ढं
की साड़ी पहने थी। उसे देखते ही वह अपनत्व के स्निग्ध स्वर
बोला—"और लीजिये, यह रही इनकी ममी। आज मैं जो भी
उसमें सबसे ज्यादा खून इसी बेचारी ने दिया है....बड़ी तकलीफ़ें दी
मैंने इसे...अच्छा, तो तुम लोग घूम आओ। लगता है सब कुछ पह
से पका-पकाया है...।"

नहीं...नहीं....नहीं! मैंने मन ही मन कहा। ये सारे शब्द मैं
बहुत तरह सुने हैं, बहुत बार सुने हैं...सब खोखले हैं, सब झूठे हैं
मुझे सिर्फ़ इतनी बात याद रखनी है कि मैं नाटक-मण्डली के अभिनेताअ
के बीच में हूँ और यह सब कुछ जो दीखता है—माया है, दिखावा है
मुझे नहीं भूलना कि भुवनेश सबसे बड़ा अभिनेता है। इसी ने त
अभी दो-एक दिन पहले लड़कियों के एक हाईस्कूल में अपने नम्रतावे
में कहा था—"आप कल होनेवाली माँ हो, आप मेरी माता हो, आ
मुझे आशीर्वाद दीजिये कि आपका यह बेटा बाहरवालों के सामने पुरा
भारत का कोई गौरव-चिन्ह दिखा सके।"...बेचारी प्रिंसिपल को पसी
आ गया था। सारे शहर के लोग हँसते रहे थे। मगर अपनी मंडल
की इन लड़कियों को 'माँ' नहीं कहता, इन्हें तो 'बेटियाँ' कहता है....पत
सलज्ज-भाव से मुस्कुरा रही थी। तीखी लेकिन छिपी नजरों से मैं
इन नकली बेटियों को देखा। स्नेह तो बेटियों से भुवन को बहु
दिखाई देता है। इतने प्यार से सिर पर हाथ रखकर कोई अपनी बे
को कहाँ अपने से सटाता है...आदमी हिम्मतवाला है। पत्नी के आ
पर सकपकाया नहीं, न ही बेटी को धीरे से अलग हटाया। मैंने ग़ौ
से ममी के चेहरे पर ताड़ने की कोशिश की कि वहाँ कहीं ईर्ष्या, जल
की भावना मिले तो कोई नतीजा निकालूँ...

"अम्मा पूजा पर ही हैं?" भुवनेश ने पूछा और फिर बोला-
"अच्छा तो फिर तुम जाओ, देर हो है। जल्दी आना—कहीं खा
को भी बैठा रहूँ।...जाइये।" उसने एक हाथ छाती पर रखकर ए

दरवाज़े की ओर फैला कर ज़रा झुके-झुके ठीक उसी तरह उन्हें रास्ता दिखाया जैसे परसों महारानी को दिखाया था....यहाँ की फ़िज़ाओं में नाटकीयता है....।

"मैं सच्चे मायनों में खानाबदोश हूँ।" उसने मुग्ध-दृष्टि से उन्हें जाते देखते हुए कहा—"खाना कहते हैं घर को, और दोश का अर्थ होता कन्धा। अर्थात् जो कन्धेपर घर लिये घूमे। अब मैं हूँ कि सारा परिवार लिये शहर-शहर घूम रहा हूँ। क्योंकि बिना इनलोगों के मैं कुछ भी नहीं कर सकता। थोड़ी तकलीफ ज़रूर होती है लेकिन जितने काम करनेवाले हैं सबको यह तो महसूस होता रहता है कि सचमुच हमलोग उनके मां-बाप की जगह हैं। मैंने हमेशा कोशिश की है कि मेरा थियेटर एक इन्स्टीट्यूशन बने··· एक परिवार...।"

मैं बुरी तरह 'बोर' हो गया था। पेशेवर नाटक और नाटककार किस तरह के इन्स्टीट्यूशन होते हैं, खूब जानता हूँ। गाल रंगे, कूल्हे मटका-मटकाकर चलनेवाली बेटियाँ, अभी बाहर किसी से कमर में हाथ डलवाये इठलाती चली जा रही होंगी। एकाध शूटिंग के वक्त जो इन बेटियों की हरकतें देखी हैं वे क्या सहज ही दिमाग से निकल जायेंगी? हमलोग दो-एक कमरे पार करके फिर खुले से कमरे में आगये। बिल्कुल बारात का दृश्य था। कमरों में धरती पर बिछे बिस्तरे पर खड़े कोई साहब कपड़े बदल रहे थे और स्लीपिंग सूट में कोई भावी 'प्रेमरी पैंक' ब्रश करते चले जा रहे थे। कहीं गर्दन ऊपर तान तानकर शेव हो रही थी और कहीं एक साहब दूसरे की टाई की नॉट ठीक कर रहे थे। इस बात के प्रति सभी लोग 'कांशस' थे कि बाहर खिड़कियों, झिरियों से लड़के और रिक्शेवाले इनकी झाँकी लेने के लिये ज़रूर बेताबी से मँडरा रहे होंगे।

एकान्त में हमलोग एक मेज़ के सहारे बैठे चाय पी रहे थे। पेशेवर इण्टरव्यूकार को किन किन बातों के जानने की ज़रूरत है इसे शायद

बताना कि नाटक अपनाये हुए इसे तीस साल हो गये। उस समय यह मुश्किल से अट्ठारह का रहा होगा...तीस साल लगातार स्टेज पर काम करने या दिमागी रूप से स्टेज की ही दुनियाँ में रहते हुए क्या स्टेज और बाहर की विभाजन-रेखा इसके सामने से बिल्कुल ही नहीं मिट गई होगी? क्या सचेतन-अचेतन रूप से अपने को यह तेज-लाइटों, कैमरे के लैंसों और दर्शकों की आँखों के आगे ही हर समय नहीं सोचता रहता होगा। पत्नी से बात करते समय, अकेले में बच्चे को खिलाते या यहाँ तक कि सोते समय भी यह इसके दिमाग में नहीं घुसा रहता होगा कि जो कुछ यह कर रहा है वह सच नहीं, वह सचमुच नहीं कर रहा—बहुत दूर कहीं दर्शकों की अपलक देखती अदृश्य आँखें हैं और यह सब यह उन्हीं के लिये कर रहा है? भारतीय मायावाद की कैसी अच्छी अनुभूति है। अच्छा, यह भी तो हो सकता है कि यह उस स्टेज के जीवन को ही सच मानने लगा हो और बाकी सारी बातें उसे इसी तरह नकली लगने लगी हों जैसे हमें स्टेज की लगती हैं। इसमें इस बेचारे का दोष भी क्या, तीस साल कम नहीं होते''''

जितना ही मैं उसके बारे में सोचता, उसे न्याय-सिद्ध करने की कोशिश करता उतनी ही मुझे अपने ऊपर झुँझलाहट आती''''! मैं तो अपने को बड़ा सूक्ष्म-द्रष्टा लगाता हूं क्या कोई भी ऐसा क्षण नहीं पा सकता जब इसे ऑफ द स्टेज देख सकूँ। जब इसका सच्चा रूप खुल कर आये, जब यह स्निग्ध मुस्कुराहट, यह सधे अंग-चालन, यह आदर्श और मिशन की बातें, यह नाटकीय नम्रता और शिष्टता न हो''''! मैं इसे कब देखूँ, जब कुर्ते में बटन न होने पर यह झुँझलाकर उसे नौकर के सिर पर दे मारता हो, जब इसकी पत्नी पंजे निकाल-निकाल कर उसकी इन बेटियों के साथ इसके रिश्ते बखान रही हो।' जब बालों को मुट्ठी में जकड़ यह सिर झुकाये बैठा हो कि इसकी जिन्दगी सिर्फ एक भुलावा और धोखा रही है—इसने दूसरों की रुचियों के अनुसार लिखे गये, दूसरों के नाटकों को ही अपना जीवन बनाया है,

री मुस्कुराहट। मैंने श्रद्धा से हाथ जोड़े तो मुस्कुराहट और मुखर हो गई। वे बोलीं कुछ नहीं।

वहाँ से ज़रा हटकर भुवनेश बोला—"अक्सर ये मेरे हर नाटक में उपस्थित रहती हैं! देखती रहती हैं और उन्हीं की निगाहों की ताक़त है जो मुझे स्टेज पर एकदम बदल कर रख देती है।"

'झूठ है!'—मैंने मन में ही काफी ज़ोर से कहा। तुम सफ़ेद झूठ बोल रहे हो, अभिनेता। तुमने सिर्फ लोगों को बहकाने के लिये इस बेजबान माँ को यहाँ बैठा लिया है और अब अलग ले जाकर तुम मुझे अपनी मातृ-भक्ति के उद्‌गार दिखा रहे हो। क्योंकि तुम जानते हो हर महान आदमी का मातृ-भक्ति होना ही चाहिये और इन दिनों चूँकि तुम महान् व्यक्ति का अभिनय कर रहे हो, इसलिये तुम्हें वे सारी बातें कहनी, करनी और दिखानी ही चाहियें जो एक आदर्श महान् व्यक्ति की आवश्यक हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ऐक्टर बनने से पहले तुम माँ को मार-पीटकर ज़रूर उसके गहने छीन ले जाया करते थे, उन्हें जुए या शराब फूँक डाला करते होगे। और आज भी तुम्हारी बेटियों को लेकर जब तुम्हारी बीबी से लड़ाई होती होगी और यह तुम्हारी पूज्य माँ बैठी-बैठी चौखट से सिर फोड़ती होगी कि बीबी के कहने में आकर तुमने माँ को नौकरानी बना दिया है—या यह चुड़ैल जो खाना देती है वह सिर्फ गाय-बैलों को ही दिया जा सकता है!—इस मुलम्मे की असलियत मैं जानता हूँ, यों आसानी से हार नहीं मानूँगा। और इसलिये तो मैं इस वक्त 'विंग' में आया हूँ।

अभी नाटक शुरू नहीं हुआ था। मैं जानता था कि नाटक शुरू होते ही भुवनेश एकदम बदल जाएगा—उसके ऊपर नाटक छा जायेगा, तब विंग के बाहर और विंग के भीतर दो-दो नाटकों को सँभाल पाना उसके लिये मुश्किल हो जाएगा। अभी तो उसे फ़ुर्सत है इसलिये इस लबादे और मुखौटे को सँभाले रह सकता है, लेकिन उस नाटक की गति जब तीव्र हो जायगी, जिसे यह असली नाटक समझे है, तब की बात मैं

पहले से जानता हूँ। स्टेज पर भगवान् बुद्ध का अभिनय करनेवाला भीतर घुसते ही पहले पर्देवाले को झापड़ रसीद करेगा कि समय पर पर्दा क्यों नहीं गिराया। उस क्षण का मैं क्या करता, यह तो नहीं मालूम; लेकिन हाँ, मैं था उसी क्षण की प्रतीक्षा में !

भीतर कम पावर वाले बल्ब इधर-उधर लटके जल रहे थे। यह मानना पड़ेगा कि सभी कुछ बड़ा व्यवस्थित और शान्त था। किसी को कोई हड़बड़ी या जल्दी नहीं थी। भुवनेश भी तटस्थ-सा एक ओर खड़ा किसी श्रद्धालु से बातें कर रहा था। नाटक शुरू होने में पाँच मिनट की देर रह गई थी। मुझे तो कॉलिज के, या यों ही शौकिया नाटक-खेलनेवालों का अनुभव था। वहाँ तो यह क्षण जीवन-मरण का होता है। पार्ट याद न होने से हरेक के हाथ-पाँव काँप रहे हैं। सेट्स बने नहीं होते हैं। भीतर ऐसी भागदौड़ होती है, जैसे कहीं आग लग गई हो—बाहर ज्यादा भीड़ है या भीतर यह, तय करना मुश्किल होता है—एक्टर के ममेरे भाई के दोस्त भी अपने भैया या बिटिया को देखने, फ़्री-पास की सिफ़ारिश करने या योंही अपना महत्व सिद्ध करने इधर से उधर घूमा करते हैं। लेकिन यहाँ तो सभी कुछ बड़े स्वाभाविक रूप में चल रहा था।

सहसा घण्टी बजी और भीतर की रोशनियाँ गुल हो गईं। बाहर का पर्दा उठा। भीतर रेलवे के बुकिंग नम्बर लिखे भारी-भारी बक्से एक ओर रखे थे, इनमें ये लोग अपने कपड़े या और साज-सामान भरकर लाये होंगे ··रोशनी गुल होने से पहले मैंने देख लिया था कि भुवनेश शायद कपड़े बदले शायद दूसरी विंगकी ओर वाले ग्रीनरूम में चला गया था···मैं चुपचाप जानबूझकर उन सन्दूकों के पीछे इस तरह छिपकर खड़ा हो गया कि स्टेज से आते-जाते लोगों को बिना दीखे देख सकूं···मुझे ज़िद थी और वह क्षण देखना था जब भुवनेश ऐक्टर न हो। दिल में धड़कन भी थी कि कहीं यहाँ भी फ़ेल हुआ तो···

और जो क्षण मैंने देखा, पता नहीं उसे क्या नाम दूं ? वह कुछ

ऐसा विचित्र क्षण था कि मुझ से फिर वहाँ नहीं रहा गया और बिना आगे देखने की चिन्ता किये मैं चला आया। वह सचमुच मेरी हार थी या जीत यह भी तो नहीं कह सकता। आज भी नहीं कह सकता कि उस क्षण वह ऐक्टर था या नहीं'''अगर उस क्षण भी वह ऐक्टर ही था तो मानना पड़ेगा कि ऐक्टिंग उसका खून बन गई थी'''उसके जीवन में वह क्षण था ही नहीं जिसकी मुझे तलाश थी। लेकिन अगर वह उस क्षण ऐक्टर नहीं था तो'''माफ़ कीजिये मुझे विश्वास नहीं है...

मेरी निगाहें स्टेज पर थीं। वहाँ बेटियाँ जन-गन-मन अधिनायक गा रही थीं।'''हॉल के सभी लोग खड़े थे'''हो सकता है बगुले-सी चोंच झुकाकर ग्रीनरूम में भुवनेश ही खड़ा हो'''मुझे नाटक के बाद का सारा दृश्य याद हो आया। इसके बाद उसीकी 'एण्ट्री' है।

अचानक मैंने देखा भीतर अँधेरे में एक ओर वह लपका चला जा रहा है। सामनेवाली रोशनी की ओर से आड़ कर के आँखें मलकर ग़ौर से देखा। वहीं, वही तो है। पूरे मेक-अप में है। लेकिन इधर कहाँ जा रहा है'''मुझे याद आया, हर क़दम पर ज़ोर देता, मानो धरती को दबा-दबाकर चल रहा हो, लम्बे-लम्बे डगों से वह जिधर चला जा रहा है उधर तो इसकी मा बैठी है। वह शायद पर्दों की आड़ में थी। उसने लम्बे-चौड़े काले पर्दे की एक मोटी-सी सलवट को इधर-उधर कर दिया। मा सामने आ गई, उसने घुटनों के बल झुककर मा के चरण छुए और बिना इधर-उधर देखे उन्हीं क़दमों से लौट आया''''

मैंने इधर-उधर देखा, शायद किन्हीं दर्शकों के लिए यह सारा ऐक्टिंग हो रहा हो''''जहाँ तक मुझे पता है, मैं दीख नहीं सकता था और दर्शक उसकी मा थी।

—तो उस दर्शक के सामने भी वह ऐक्टिंग कर सकता है!'''आप विश्वास मानिये—आज भी मुझे उस पर कोई श्रद्धा नहीं है।

*

अभिमन्यु की आत्महत्या

I shall depart, steamer with swaying masts, raise anchor for exotic landscapes."

'Sea Breeze'
Mallarme'

तुम्हें पता है, आज मेरी वर्षगाँठ है और आज मैं आत्महत्या करने गया था?

मालूम है, आज मैं आत्महत्या करके लौटा हूँ?

अब मेरे पास शायद कोई "आत्म" नहीं बचा, जिसकी हत्या हो जाने का भय हो। चलो, भविष्य के लिये छुट्टी मिली!

किसी ने कहा था कि उस जीवन देने वाले भगवान को कोई हक़ नहीं है कि हमें तरह तरह की मानसिक यातनाओं से गुज़रता देख-देख कर बैठा-बैठा मुस्कुराये, हमारी मजबूरियों पर हँसे। मैं अपने आप से लड़ता रहूँ, छटपटाता रहूँ, जैसे पानी में पड़ी चींटी छटपटाती है, और किनारे पर खड़े शैतान बच्चे की तरह मेरी चेष्टाओं पर वह किलकारियाँ मारता रहे! नहीं, मैं उसे यह क्रूर आनन्द नहीं दे पाऊँगा और उसका जीवन उसे लौटा दूँगा। मुझे इन निरर्थक परिस्थितियों के चक्रव्यूह में डाल कर तू खिलवाड़ नहीं कर पायेगा कि हल तो तेरी मुट्ठी में बन्द है ही। सही है, कि माँ के पेट में ही मैंने सुन लिया

छलावा और स्वप्न-भङ्ग खुद मंत्र-टूटे साँप-सा पलट कर तुम्हारी ही एड़ी में अपने दाँत गड़ा देगा और नस-नस से लपकती हुई नीली लहरों के विषबुझे तीर तुम्हारी चेतना के रथ को छलनी कर डालेंगे और तुम्हारे रथ के टूटे पहिये तुम्हारी ढाल का काम भी नहीं दे पायेंगे··· कोई भीम तब तुम्हारी रक्षा को नहीं आयेगा।

क्योंकि इस चक्रव्यूह से निकलने का रास्ता तुम्हें किसी अर्जुन ने नहीं बताया—इसीलिए मुझे आत्महत्या कर लेनी पड़ी और फिर मैं लौट आया—अपने लिये नहीं, परीक्षित के लिये, ताकि वह हर साँप से मेरी इस हत्या का बदला ले सके, हर तक्षक को यज्ञ की सुगंधित रोशनी तक खींच लाये।

मुझे याद है : मैं बड़े ही स्थिर क़दमों से बान्द्रा पर उतरा था और टहलता हुआ "सी" रूट के स्टैण्ड पर आ खड़ा हुआ था। सागर के उस एकान्त किनारे तक जाने लायक पैसे जेब में थे। पास ही मजदूरों का एक बड़ा-सा परिवार धूलिया फुटपाथ पर लेटा था। धुँआते गड्ढे जैसे चूल्हे की रोशनी में एक धोती में लिपटी छाया पीला-पीला मसाला पीस रही थी। चूल्हे पर कुछ खदक रहा था। पीछे की टूटी बाउण्ड्री से कोई घूमती गुनगुनाहट निकली और पुल के नीचे से रोशनी—अँधेरे के चारखाने के फीते-सी रेल सरकती हुई निकल गयी—विले पार्ले के स्टेशन पर मेरे पास कुल पाँच आने बचे थे।

घोड़बन्दर के पार जब दस बजे वाली बस सीधी बेण्ड-स्टैण्ड की तरफ़ दौड़ी तो मैंने अपने आप से कहा—"वॉट डू आई केयर ! मैं किसी की फ़िक्र नहीं करता !"

और जब बस अन्तिम स्टेज पर आकर खड़ी हो गयी तो मैं ढालू सड़क पार कर सागर-तट के ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर उतर पड़ा। ईरानी रेस्त्रॉं की आसमानी नियोन लाइटें किसी लाइटहाउस की दिशा देती